उच्च शिक्षा में सुधार का बड़ा दांव

यहां स्कैन करें

हरिवंश चतुर्वेदी । डायरेक्टर, बिमटेक

देश की शीर्षस्थ संस्थाओं से साझेदारी के लिए ही विदेशी विश्वविद्यालयों को आने की अनुमति दी जाए। बीमा कंपनियों के मामले में साल 2000 की ऐसी शर्त सफल रही थी।

भारत में इन दिनों विदेशी उच्च शिक्षण संस्थानों के परिसरों की स्थापना सुर्खियों में है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, यानी यूजीसी द्वारा जारी दिशा-निर्देश संबंधी मसौदे पर लोगों से सुझाव मांगने की मीयाद पूरी हो चुकी है और अब नजर सरकार के अगले कदम पर है। देखा जाए, तो यह कोई नया मामला नहीं है। पूर्ववर्ती यूपीए सरकार के दौरान भी इससे जुड़े करीब सात बिल तैयार किए गए थे, पर विरोध के कारण उनको पेश नहीं किया जा सका। तब यह कहा गया था कि ऐसे संस्थान हमारे विश्वविद्यालयों की सेहत बिगाड़ सकते हैं। मगर अब नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में बताया गया है कि देश की उच्च शिक्षा को विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्द्धी बनाने के लिए जरूरी है कि हमारे शिक्षण संस्थानों की सहभागिता बाहरी विश्वविद्यालयों के साथ बढ़े।

भारत में उच्च शिक्षा का एक बड़ा बाजार है। देश की करीब 1.4 अरब आबादी में उच्च शिक्षा पाने वाले विद्यार्थियों की संख्या 4.13 करोड़ है। आलम यह है कि हर साल छह से सात लाख छात्र अच्छी शिक्षा हासिल करने के लिए दूसरे देशों का रुख करते हैं। इसकी एक वजह यह भी है कि भारत के शीर्ष संस्थानों में कई बार कट ऑफ 99 से 100 प्रतिशत तक चला जाता है, जिसके कारण छात्रों की एक बड़ी संख्या बेहतर शिक्षा से दूर हो जाती है। सरकार इसी कमी को पाटना चाहती है, जिसके लिए विदेशी उच्च शिक्षण संस्थानों पर दांव खेला जा रहा है।

विदेशी विश्वविद्यालयों का आना कई मामलों में फायदेमंद हो सकता है। इससे हम 'टैलेंट क्राइसिस', यानी प्रतिभा के संकट से पार पाने में सफल हो सकते हैं। रिपोर्ट बताती है कि देश के 50 फीसदी कॉलेजों में जरूरत के आधे शिक्षक भी नहीं हैं। फिर, पिछले 30 वर्षों में उच्च शिक्षा, विशेषकर तकनीकी शिक्षा का जो विस्तार हुआ है, उसका नुकसान मानविकी व विज्ञान जैसे विषयों के छात्र-छात्राओं को उठाना पड़ा है। उनके लिए रोजगार के अवसर तुलनात्मक रूप से सिमटते

गए हैं। हमारे यहां बेशक आईआईटी, आईआईएम जैसे उच्च श्रेणी के शिक्षण संस्थान हैं, और तमाम तरह के केंद्रीय विश्वविद्यालय भी, लेकिन देश का हर बच्चा इतना भाग्यशाली नहीं होता कि वह इन संस्थानों में दाखिला पा सके।

विदेशी उच्च शिक्षण संस्थान हमारे कई संस्थानों पर बीस साबित हो सकते हैं। वहां छात्र-छात्राओं को बेहतर सुविधाएं तो मिलेंगी ही, अच्छा पाठ्यक्रम, पठन-पाठन का अत्याधुनिक तरीका देश में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का माहौल और समृद्ध करेगा। इससे शिक्षकों में भी प्रतिस्पर्द्धी माहौल बढ़ेगा। फिलहाल भारत में करीब 15 लाख शिक्षक उच्च शिक्षण-कार्य में जुटे हैं, जिनमें से कई संसाधनों के अभाव में नई तकनीक से दूर हैं। विदेशी संस्थानों की आमद से उनमें तकनीक अपनाने की होड़ मच सकती है।

मगर इसकी कुछ कीमत भी हमें चुकानी पड़ सकती है। हमारे बेहतर शिक्षण संस्थानों को इसका बड़ा नुकसान हो सकता है। उनकी अच्छी फैकल्टी को विदेशी संस्थान सुविधाओं और तनख्वाह के नाम पर लुभाने की कोशिश कर सकते हैं। यूजीसी के दिशा-निर्देश संबंधी मसौदे में विदेशी संस्थानों के लिए किसी भी तरह के नियमन न होने की बात कही गई थी। वे नियम भी उन पर लागू नहीं होंगे, जिनसे हमारे शिक्षण संस्थान बंधे हुए हैं। जाहिर है, उनकी स्वायत्तता हमारे संस्थानों को चोट पहुंचाएगी। ऐसे में, उनको कम से कम 50 प्रतिशत फैकल्टी अपने मुख्य परिसर से लाना अनिवार्य किया जाना चाहिए, जिनके लिए यहां रहकर पढ़ाना आवश्यक बनाया जाए।

सवाल यह भी है कि कितने विदेशी विश्वविद्यालय भारत का रुख करेंगे? बोस्टन कॉलेज के पूर्व प्रोफेसर व भारत की उच्च शिक्षा पर शोध करने वाले अंतरराष्ट्रीय स्तर के शिक्षाविद फिलिप ऑल्टबैक का मानना है कि ऐसा शायद ही हो सकेगा। उनका कहना है कि नामचीन विदेशी विश्वविद्यालय भारत जैसे देशों में अपना परिसर नहीं बनाएंगे, क्योंकि उन्होंने अपने मूल देश से इतर कहीं और कैंपस नहीं खोले हैं। पिछले पांच दशकों में चंद अमेरिकी या यूरोपीय विश्वविद्यालयों ने अपने परिसर बाहर तभी खोले हैं, जब उनको बनी-बनाई इमारत जैसी कई तरह की रियायतें मिलीं। सिंगापुर, संयुक्त अरब अमीरात जैसे देशों में इन विश्वविद्यालयों के पहुंचने की यही मूल वजह थी। चीन ने तो 'कम ऐंड बिल्ड योर कंट्री' (आइए और अपने देश को बनाइए) जैसे अभियान चलाकर अनिवासी प्रोफेसरों को कई तरह की अतिरिक्त सुविधाएं देकर वापस मुल्क लौटने की पेशकश की थी, जिसका पर्याप्त लाभ उसे मिला। भारत इन सबसे अभी कोसों दूर है। हमारे कई प्रोफेसर विदेश के अनेक प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में पढ़ा रहे हैं, लेकिन उनको वापस बुलाने की कोई गंभीर कोशिश हमने अब तक नहीं की है।

हकीकत यही है कि शिक्षा के क्षेत्र में हमारी स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। तमाम तरह की समितियों द्वारा छह फीसदी खर्च करने की सिफारिश के बावजूद हम अपनी राष्ट्रीय आय का बमुश्किल तीन फीसदी शिक्षा पर खर्च कर पा रहे हैं। आज देश के कुल उच्च शिक्षण संस्थानों में 75 फीसदी निजी हाथों में हैं। सरकार सार्वजनिक शिक्षा के मद में अपना खर्च लगातार घटा रही है। यह सही प्रवृत्ति नहीं है। उच्च शिक्षा किसी भी देश के समग्र विकास में उल्लेखनीय भूमिका निभाती है। यह आर्थिक विकास की रफ्तार बढ़ाने में भी मददगार है। अपने यहां भी जिन राज्यों में उच्च शिक्षा पर ज्यादा ध्यान दिया गया, उनकी आर्थिक तरक्की कहीं बेहतर है। तमिलनाडु, तेलंगाना, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक जैसे राज्य इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। इसके विपरीत बिहार, उत्तर प्रदेश जैसे सूबों की खस्ता हालत भी हम देख सकते हैं।

जाहिर है, अपने संस्थानों का भी हमें कायाकल्प करना होगा। शिक्षण संस्थानों के पास इतने संसाधन तो होने चाहिए कि वे अत्याधुनिक तकनीक अपना सकें। जैसे, यदि हर कक्षा में स्मार्ट बोर्ड ही दे दिया जाए, तो पढ़ाने के तरीके में गुणात्मक सुधार आएगा। इससे प्रोफेसरों के काम आसान हो जाएंगे और वे कहीं अधिक सुगमता से पढ़ा सकेंगे। बेहतर यही होगा कि देश की शीर्षस्थ संस्थाओं के साथ साझेदारी करके विदेशी विश्वविद्यालयों को आने की अनुमति दी जाए। बीमा कंपनियों के मामले में साल 2000 में ऐसी ही शर्त रखी गई थी, जो काफी सफल रही थी। मुमकिन है कि इस बार भी दोनों पक्ष इससे फायदे में रहेंगे।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)